IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय संस्कृतिक धरोहर : मुद्दे और चुनौतियाँ

डॉ गरिमा सिंह
सहायक प्राध्यापक- अर्थशास्त्र शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सतना (मध्य प्रदेश)

1. प्रस्तावना (Introduction) –

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि वह अन्य संस्कृतियों के गुणों को ग्रहण कर एक सामंजस्य स्थापित करती आई है। संभवतः इसी गुण के कारण भारतीय संस्कृति पर अन्य संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा। प्राचीनकाल में भारत में शक, कुषाण, मध्यकाल में मुसलमान तथा आधुनिक काल में पूर्तगाली, फ्रांसीसी एवं अंग्रेज आए। ये सभी अपने साथ अपनी संस्कृति लाए। चूँकि इन विदेशी जातियों ने भारत में एक लम्बे समय तक निवास किया। अतः इनकी संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था, फिर चाहे वह प्रभाव प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष। वास्तव में पुर्गगाली, फ्रांसीसी एवं अंग्रेजों के भारत आगमन से भारत में पाश्चात्य संस्कृति का प्रवेश हुआ। परिणामस्वरूप पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति में अनेक परिवर्तन कर प्रभाव डाला।[1]

पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप वंशानुगत पेशा अपनाना जो जाति व्यवस्था का आधारभूत तत्व था, खत्म हो गया है। आज अनेक जाति एवं धर्म के व्यक्ति एक साथ कारखानों में काम करते हैं तथा विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में एक साथ शिक्षा ग्रहण करते है। आज योग्यता को महत्व दिया जाने लगा है। व्यक्ति अपने योग्यता के विकास तथा परिश्रम द्वारा अपनी स्थिति को उच्च कर सकता है।[2]

डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि अधिक से अधिक मात्रा में औद्योगीकरण होना चाहिए क्योंकि सभी व्यक्ति एक साथ मिलकर काम करते हैं। एक साथ खाना खाते हैं एवं एक दूसरे के शादी–ब्याह में जाते हैं। जिससे जातिगत भेदभाव कम होते हैं तथ रोजगार के अवसर भी प्राप्त होते हैं।[3]

2. सहित्य का पुनरावलोकन (Review of Literature) : –

वैश्विक संदर्भ में भारतीय संस्कृतिक धरोहर : मुद्दे और चुनौतियाँ विषय से संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन निन्मानुसार है–

1. महात्मा गाँधी ने वैश्विक संस्कृति के संबंध में कहा था कि मैं नहीं चहता कि मेरे घर में सभी दिशाओं में बन्दीगृह की–सिद्ध दीवारें हो और मेरी खिड़कियाँ बंद रखी जाएँ। मैं चाहता हूँ कि सभी देशों की सांस्कृतिक हवाएँ मेरे घर के अन्दर मुक्त रूप से प्रवेश एवं विचरण करें। लेकिन मुझे यह कतई स्वीकार नहीं कि उनके प्रभाव में मेरे पैर ही अपनी धुरी से उखड़ जाएँ।... मेरा ऐसा धर्म नहीं जो मेरे घर को कैदखाना बना दें।[4]

2. रामजी सिंह[5] (1997) ने विज्ञान वं अध्यात्म के समन्वय में गांधी जी के विचार के बारे में कहा है कि गांधी जी ने ज्ञान के आधर पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का जो व्यावहारिक प्रयत्न किया है, वही इक्कीसवीं सदी का प्रकाश स्तम्भ होगा। अभी तक सत्य, अहिंसा महात्माओं के गगनविहारी उपदेश रहे, गांधी ने उन्हें समाज विज्ञान की धरातल पर कसकर लोक व्यवहार का उपकरण बनाया। संक्षेप में अध्यात्म एवं व्यवहार का यह समन्वय गांधी के व्यक्तित्व की पहचान तो है ही आने वाले युग के लिए एक स्वस्थ जीवन–दर्शन का पाथेय भी है। विज्ञान के बिना अध्यात्म पंगू है और अध्यात्म के बिना विज्ञान अंध है।

3. आज भारतीय समाज एक विकट संकट से गुजर रहा है। यह संकट जितना सामाजिक और राजनीतिक है, उससे अध्रिक सांस्कृतिक क्योंकि संस्कृति के गोला–बारूद से ही राजनीति की लड़ाई चल रही है। सांस्कृतिक प्रतीक राजनीतिक युग के अस्त्र–शस्त्र बनाए जा रहे हैं।[6]

4. एक उच्चतर संस्कृति हमेशा एक उच्चतर राजनैतिक महौल की देन होती है। संचार क्रान्ति के युग में ऐसा नहीं हो सकता कि शासक वर्ग राष्ट्रीय तथ्यों से गिरकर कलह, घोटाले, धूर्तता और भोग विलास में डूबे हों और समाज सांस्कृतिक अत्थान करें।[7]

5. सांस्कृतिक नागरीकता हमें केवल उपभोक्ता समाज का रीढ़विहीन नागरिक बनने से ही नहीं रोकती, वह अंध उपभोग की जगह आलोचनात्मक उपभोग के लिए प्रेरित करती है। आज हमारी सांस्कृतिक नागरिकता गंभीर संकट में है, फिर भी वह उपभोक्तावाद से लगातार लड़ रही है। जरूरत है, चौतरपफा प्रयास से उसे बचाने की।[8]

6. रावेन्द्रसाहू[9] (2013) ने बाजारवाद के संबंध में कहा है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रथ में सवार बाजारवाद ने हमारी संस्कृति में अनेक व्यामोह पैदा कर दिए हैं, जिससे मनुष्य, मनुष्य नहीं बल्कि कन्ज्यूमर बनता जा रहा है। आज जरूरत इस बात की है कि हम इसकी ;बाजारवादद्ध की मृगमरीचिका को समझ कर उन मूल्यों को आत्मसातकर अपना चहुमुखी विकास करें।

3. उद्देश्य (Objective) : -

प्रस्तुत शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय समाज के लोगों के विचारों में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना
2. पाश्चात्य संस्कृति का पारिवारिक संबंध पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. पाश्चात्य संस्कृति का परम्परागत व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
4. पाश्चात्य संस्कृति का भोगवाद पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
5. पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय शिक्षा पर प्रभाव का अध्ययन करना

4. शोध प्रविधि (Methodology) :

यह द्वितीयक तथ्यों पर आधरित है। द्वितीयक तथ्यों का संकलन पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, आलेखों आदि से किया गया है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

5. विश्लेषण (Analysis) -

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय समाज के लोगों के विचारों में परिवर्तन आया और वे विकास की ओर अग्रसर हुए। न जाने कितनी कुप्रथाएँ, यथा–सतीप्रथा, बाल–विवाह, विधवा–विवाह निषेध आज प्रायः समाप्त हो गई हैं और भारतीय समाज का दृष्टिकोण पहले की तुलना में अधिक व्यापक हो गया है। आज भारतीय समाज में विधवा की स्थिति पहले जैसी नहीं रह गई है। अब विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया जाने लगा है। आज का समाज संकीर्ण विचारों से काफी कुछ उबर चुका है। वास्तव में पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य संस्कृति के भारत में प्रसार से जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, उनका परिवर्तनकारी प्रभाव भारतीय समाज के विवाह, परिवार और जाति पर पड़ा और उसके फलस्वरूप उनमें परिवर्तन आए। आर्थिक रूपान्तरण ने उन नई परिस्थितियों को जन्म दिया, जिसने पहले विवाह, परिवार और जाति के परम्परागत आधार बदले और फिर उन आधारों के बदलने से विवाह, परिवार और जाति में परिवर्तन आए, शहरीकरण और औद्योगीकरण ने नए, व्यक्तिवादी आदर्शो को जन्म दिया। अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाइयों के प्रचार द्वारा, नवीन यूरोपीय मान्यताओं का प्रचार हुआ, जिनके प्रभाव में विवाह, परिवार और जाति से संबंधित आधारभूत मान्यताओं और आदर्शों की समालोचना और पुनर्परीक्षण किया गया, विवाह में वैयक्तिक स्वच्छन्दता, यौन सन्तुष्टि के प्रति प्रकृतिवादी दृष्टिकोण, नारी अधिकार, परिवारिक संबंधों में प्रजातंत्रवादी विचारों की मांग के विचार इसी काल में फैले।''[10]

पाश्चात्य संपर्क में होने के परिणामस्वरूप भारत में दो मुख्य विचारधाराओं का उद्भव हुआ – (1) अपरिवर्तनशील विचारधारा (2) प्रगतिशील विचारधारा। दोनों ही विचारधाराओं ने भारतीय समाज को प्रभावित किया। प्रथम विचारधारा के अनुयायी हिन्दू समाज में परिवर्तन के घोर विरोधी थे। इस विचारधारा का प्रभाव यह पड़ा कि भारतीय अपनी संस्कृति, अपने धार्मिक ग्रंथ वेद आदि की रक्षा करने में कामयाब रहे और बहुत कुछ हद तक भारतीय संस्कृति के गुण जो अपने अस्तित्व में हैं, इस अपरिवर्तनशील विचारधारा के कारण ही हैं। द्वितीय विचारधारा ने भी भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। इस विचारधारा ने प्रगतिशील विचारधारा के नौजवानों का निर्माण किया। परिणामस्वरूप भारतीय नौजवानों ने यूरोप के बुद्धिवाद अथवा युक्तिवादी चिंतन को अपनाया तथा ब्राउन, बैंथम, लाक, स्टूअर्ट मिल जैसे दार्शनिकों एवं वोल्टेयर और एडम जैसे सामाजिक चिन्तकों का अध्ययन किया। प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित भारतीय युवकों ने अनेक मासिक पत्रों यथा– एथेनियम और स्पेक्टेटर आदि का प्रकाशन किया जिसमें हिन्दू समाज के रीति–रिवाजों की खुलकर आलोचना की गई। द्वितीय विचारधारा के प्रभाव के संबंध में डॉ. ताराचन्द्र ने लिखा है – '' इस प्रकार मुक्त अनुसंधान और मुक्त चिंतन की जो भावना पैदा हुई और जिसे 18वीं सदी के यूरोपीय विचार के बुद्धिवाद से पोषण प्राप्त हुआ, उसने कुसंस्कारों और बुद्धि विरोधी क्रूर रूढ़ियों का सामना किया और साथ ही भारतीय समाज में फैले आम दुराचार को देखा तो उनके मन की नराजगी प्रायः बड़े उग्र तरीके से प्रकट होती थी, उनमें से कई नौजवान, कट्टरता का प्रतिवाद, खान–पान संबंधी निषेधों को तोड़कर कर सकते थे। पर इनमें से कुछ जात–पाँत, मूर्तिपूजा, सती दाह, स्त्रियों की उपेक्षा तथा दूसरी सामाजिक बुराइयों की निन्दा करने से ही संतुष्ट नहीं होते। ये नौजवानों के जोश में यहाँ तक बढ़ जाते थे कि स्वयं हिन्दू धर्म और समाज का विरोध करते थे। इन लोगों ने हिन्दू समाज पर जो हमले किए, उससे सनातनों लोगों को बहुत क्रोध आया पर इससे एक उपयोगी उद्देश्य सिद्ध हुआ कि इससे कट्टर सनातनीयों में अपने विश्वासों और उनके आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार करने की भावना उत्पन्न हुई। नतीजा यह हुआ की विचारों में क्रान्ति आई।

पाश्चात्य संस्कृति ने परिवार के आकार, परिवार के सदस्यों की स्थिति, विवाह के स्वरूप और पारिवारिक संबंधों आदि को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है। आज व्यक्तिवादिता और भौतिकता में वृद्धि होने से संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकांकी परिवारों की संख्या बढ़ रही है। सभी पति–पत्नी केवल अपने बच्चों के साथ अलग रहकर अपनी सम्पत्ति का उपभोग करने का प्रयत्न करते है। आज न केवल परिवारों का परम्परागत स्वरूप बदलने लगा है बल्कि माता–पिता का बच्चों पर नियंत्रण कम होता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब विवाह, प्रेम–विवाह तथा विवाह विच्छेद को प्रोत्साहन देकर परिवारों के परम्परागत संगठन को पूर्णतया बदल दिया है।[11]

पाश्चात्य संस्कृति ने मनमानी व्यवस्था जिसके तहत सेवक व्यक्तियों को परम्परागत आधार पर अपने यज्ञमान को अपनी सेवा देनी पड़ती थी, पर करारा प्रहार किया है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने एक नई अर्थव्यवस्था को जन्म दिया जिससे आर्थिक संबंध परम्परागत आधार पर नहीं अपितु नई

आर्थिक परिस्थितियों व भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित होने लगे। इस आधुनिक व्यवस्था में नाई, धोबी, बढ़ई, लुहार यहाँ तक की पुरोहित द्वारा दी जाने वाली सेवायें भी नगद भुगतान के आधार पर बाजार में उपलब्ध होने लगी है। परम्परागत संस्कार सेवकों को भी बाजार में काम करना लाभदायक सिद्ध हुआ है। इन सब कारणों से मनमानी व्यवस्था कमजोर हुई है।

पाश्चात्य संस्कृति भौतिक विकास को विकास का एक मात्र मापदंड मानती है। इस मापदंड पर वह देश अथवा व्यक्ति विकसित माना जाता है, जो भौतिक चीजों का अत्यधिक उपभोग करता है। चूँकि विकास का यह ढ़ाचा उद्योग पर आधारित है, इसलिए औद्योगिक रूप से जो देश अथवा व्यक्ति जितना अधिक उन्नत है, वह देश अथवा व्यक्ति उतना ही अधिक विकसित माना जाता है, क्योंकि वह देश अथवा व्यक्ति उन्नत उद्योग के द्वारा अधिकाधिक भौतिक चीजों को उत्पादित कर उनका अधिकाधिक उपभोग करता है। जिन देशों अथवा व्यक्ति में यह सामर्थ्य नहीं हैं वे विकासशील कहलाते हैं और उन्हें भी विकसित होने के लिए वहीं सब करता है, जो विकसित देश अथवा व्यक्ति करते हैं। इस प्रकार विकास की इस अवधारणा ने एक ऐसी भोगवादी जीवन पद्धति को जन्म दिया है, जिसमें मनुष्य जरूरी और गैर जरूरी चीजों में अंतर किए बगैर ज्यादा से ज्यादा भौतिक चीजों की माँग करता है। वास्तव में भोगवाद की यह खासियत है कि वह गैर जरूरी चीजों को भी जरूरी बना देता है। वह प्रचारक माध्यम से मनुष्य को यह समझाने में सफल हो जाता है कि इन चीजों को प्राप्त कर लेने से ही जीवन अर्थपूर्ण हो जाता है। इसलिए यदि इन्हें प्राप्त नहीं किया जाए तो जीवन अर्थहीन हो जाएगा इसी के चलते वह अपनी इच्छा की पूर्ति हेतु अनैतिक कार्यों में भी संलग्न हो जाता है।[12]

सच्चिदानंद सिन्हा – इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखते है – '' उपभोग बढ़ाया जाय तो यह सीमाहीन हो सकता है। इसके लिए नित्य नये उपक्रम तैयार किए जा कसते हैं। लेकिन उपभोग की वस्तु का हर नया अविष्कार प्रारंभ में एक छोटे समूह को ही उपलब्ध हो सकता है। बाकी लोग उसके लिए लालायित ही रहेंगें। उत्पादन के विस्तार से जब तक वह आम उपभोग के क्षेत्र में आएगी, उपभोग की कुछ नयी वस्तु अविस्कृत हो जाएगी और यह सिलसिला जारी रहेगा। इस स्थिति में गैरबराबरी और प्रतिद्वंदिता के बीज निहित हैं। इसलिए उपभोग की वस्तुओं के विस्तार पर आधारित सभ्यता, चाहे जैसी भी हो व्यापक असंतोष पैदा करेगी।''[13]

भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति किसी मनोवैज्ञानिक संतुष्टि हेतु की जाती है। यदि उद्देश्य सीमित रूप से भौतिक सुखों की प्राप्ति हो, तब वह अनियंत्रित होगा और कल्याण बढ़ाने के स्थान पर अंततः नई समस्याएँ उत्पन्न करेगा।[14]

पाश्चात्य संस्कृति से भारतीय राजनीति भी खूब प्रभावित हुई। यह पाश्चात्य संस्कृति का ही प्रभाव है कि पाश्चात्य राजनीति के प्रमुख सिद्धान्त समानता, राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता को भारतीय राजनीति में सर्वप्रमुख स्थान प्रदान किया गया। अनेक भारतीय विद्वानों ने पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों का अध्ययन कर उन्हें भारतीय राजनीति का प्रमुख अंग बनाया। मध्य वर्ग के लोगों तथा बुद्धिजीवियों

का जिन्होंने आधुनिक भारत की राजनीति में मुख्य भूमिका अदा की है, पोषण प्रधानतः पाश्चात्य राजनीतिक साहित्य से हुआ है।

अनेक भारतीय विद्वान यथा–गांधीजी, अरविंद तथा इकबाल आदि पाश्चात्य विद्वानों के विचारों से प्रभावित हुए, गाँधी जी पर टॉलस्टाय, रस्किन, एडवर्ड, कार्पेटर तथा सुकरात के विचारों का प्रभाव पड़ा। अरविन्द तथा इकबाल, हेगल तथा नीत्शे से प्रभावित हुए। अनेक विदेशी क्रांन्तियों ने भारतीयों में क्रान्तिकारी भावनाओं का संचार किया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के पीछे भी पश्चिमी विचारधारा का ही योगदान था। पाश्चात्य राजनीतिज्ञों से भारतीयों ने राजनीतिक दावपेंच तथा राजनीतिक सिद्धान्त ग्रहण किए। पाश्चात्य संस्कृति का भारत में धार्मिक क्षेत्र पर भी प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित लोगों ने भारतीय धर्म में व्याप्त अंधविश्वास व रूढ़िवादिता का परित्याग कर दिया तथा ईश्वर साकार है अथवा निराकार के प्रश्न को लेकर जगह–जगह विवाद छिड़ गए। कुछ लोग पाश्चात्यता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपना धर्म परिवर्तन कर हिन्दू धर्म की जगह ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया तथा कुछ ने हिन्दू धर्म की प्रत्येक बात में दोष ढूँढ़ना शुरू कर दिया। हिन्दू धर्म में दोष ढूँढ़ने वाला ऐसा वर्ग था जो पाश्चात्यता से पूरी तरह प्रभावित था और उसने भारतीय संस्कृति के गूढ़ तत्वों का सूक्ष्म अध्ययन नहीं किया था। पाश्चात्यता का भारतीयों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वह अपने धर्म की खुलकर भर्त्सना करने लगे तथा पाश्चात्य ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ और हिन्दू धर्म का ह्रास।[15]

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ा। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार हुआ। परिणाम स्वरूप एक शिक्षित वर्ग का निर्माण हुआ, जिसने आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। पाश्चात्य संस्कृति का शिक्षा पर प्रभाव इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में निर्मित नवीन शिक्षित वर्ग के आदर्श और विचार भारत की संस्कृति और प्राचीन परम्पराओं से प्रभावित न होकर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित थे। यह पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का ही प्रभाव था कि भारतीय शिक्षा पद्धति का महत्व अपेक्षाकृत कम होने लगा और गुरूकुलों का स्थान विश्वविद्यालय ने ले लिया।[16]

7. रिजल्ट एवं फाइडिंग (Results and findings) -

1. पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय समाज के लोगों के विचारों में परिवर्तन आया है। न जाने कितनी कुप्रथाएं, यथा सतीप्रथा, बाल–विवाह, विध्वा–विवाह निषेध आज प्रायः समाप्त हो गई है।

2. पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से देश में संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकांकी परिवारों की संख्या बढ़ रही है। आज माता–पिता का बच्चों पर नियंत्रण कम होता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब विवाह, प्रेम–विवाह तथा विवाह विच्छेद को प्रोत्साहन देकर परिवारों के परम्परागत संगठन को पूर्णतया बदल दिया है।

3. पाश्चात्य संस्कृति ने मनमानी व्यवस्था जिसके तहत सेवक व्यक्तियों को परम्परागत आधार पर अपने यज्ञमान को अपनी सेवा देनी पड़ती थी, पर करारा प्रहार किया है। इस आधुनिक व्यवस्था में नाई, धेबी बढ़ई, लुहार यहाँ तक की पुरोहित द्वारा दी जाने वाली सेवायें भी नगद भुगतान के आधार पर बाजार में उपलब्ध होने लगी हैं।

4. पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण देश में भोगवादी प्रवृति को बढ़ावा मिला है। आज आदमी विवेक से वस्तुओं का चयन नहीं कर रहा है, बल्कि बाजार की रणनीति के तहत दिखाये जा रहे विज्ञापन के आधर पर चयन कर रहा है। भोगवाद की यह खासियत है कि वह गैर जरूरी चीजों को भी जरूरी बना देता है।

5. पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ा है। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ है। आज शिक्षित वर्ग के आदर्श और विचार भारत की संस्कृति और प्राचीन परम्पराओं से प्रभावित न होकर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित हैं। आज भारतीय शिक्षा पति का महत्व अपेक्षाकृत कम होने लगा है और गुरूकुलों का स्थान महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय ने ले लिया है।

पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव पड़े है। सकारात्मक रूप में जहाँ पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण रूढ़िवादिता, कर्मकाण्ड, जातिप्रथा, छूआछूत, बालविवाह, विधवा विवाह, निषेध आदि बुराइयों का अंत हो रहा है, लोगों के विचारों में परिवर्तन आया है और वे विकास की आर अग्रसर हुए है। वहीं नकारात्मक रूप में व्यक्तिवादिता एवं भौतिकता में वृद्धि हुई हैं तथा बच्चों पर माता–पिता का नियंत्रण कम होता जा रहा है।

आज आवश्यकता है पाश्चात्य संस्कृति के नकारात्मक प्रभाव को निष्प्रभावी करने की एवं सकारात्मक प्रभाव को अपनाने की ताकि भारतीय संस्कृति के सद्गुणों के साथ–साथ पाश्चात्य संस्कृति के सद्गुणों को ग्रहण कर समाज के कल्याण में वृद्धि की जा सके।

8. संदर्भ–ग्रंथ सूची (Referrence) -

1. पाण्डेय एन.पी., 2006, सामान्य अध्ययन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृष्ठ–3
2. सिंह रावेन्द्र, 2006, ''वैश्वीकरण का अनुसूचित जाति के सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर प्रभाव'' एम.फिल–शोध प्रबंध, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान महू (इंदौर) पृष्ठ–19
3. मून, बसंत (सप.)1998, ''डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर रायटिंग एण्ड स्पीजेस,'' वाल्यूम–3
4. डी.एस. बघेल 'सामाजिक नियंत्राण और सामाजिक परिवर्तन, पुष्पराज प्रकाशन रीवा, संस्करण 1982, पृष्ठ–479
5. रामजी सिंह, ''भारतीय चिंतन और संस्कृति'', मानस पब्लिकेशन नई दिल्ली संस्करण 1997
6. मैनेजरपाण्डेय– 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य' वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण–2001, भूमिका से।
7. शम्भूनाथ– 'सांस्कृति की उत्तरकला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2000, पृष्ठ–187
8. शम्भूनाथ 'सांस्वृफति की उत्तरकला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2000, पृष्ठ–172–173
9. रावेन्द्रसाहू एवं विरेन्द्र सिंह यादव 'भारतीय संस्कृतिः कल, आज और कल' पैसफिक पब्लिकेशन दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ 277
10. जैन महेन्द्र, ''भारतीय कला एवं संस्कृति'' प्रतियोगिता दर्पण (अतिरिक्तांक) 2000, उपकार प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ–65
11. मदन जी. आर., 2005 ''परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र'' विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली, पृष्ठ–271
12. वर्मा सरोज कुमार, "हिंद स्वराजः सभ्यता विमर्श का समावेशी पाठ '' योजना 20 जनवरी 2010, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ–50
13. सिन्हा सच्चिदानंद, '' वर्तमान विकास की सीमाएँ '' विकल्प प्रकाशन मुजफ्फरपुर, पृष्ठ–19
14. तिवारी आर.एस., आलेख – ''गाँधी लोहिया और दीनदयाल'' मध्यप्रदेश संदेश, सितम्बर 2007, जनसंपर्क संचालनालय भोपाल पृष्ठ–15
15. जैन महेन्द्र, ''भारतीय कला एवं संस्कृति'' प्रतियोगिता दर्पण (अतिरिक्तांक) 2000, उपकार प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ–65
16. सद्गोपाल अनिल, आलेख – ''वैश्वीकरण के निशाने पर शिक्षा व्यवस्था'' क्रांनिकल इयर बुक,2008, क्रानिकल पब्लिकेशंस (प्रा.लि.) नोयडा, पृष्ठ–38